8. श्रीमद्भगवद्गीता

- महर्षिवेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत के भीष्मपर्व में वर्णित श्रीमद्भगवद्गीता सर्वाधिक लोकप्रिय भारतीय सनातनधर्म का ग्रन्थरत्न है।
- विश्व में सर्वाधिक टीकाओं से युक्त होने का गौरव गीता को ही प्राप्त है।

गीता में वर्णित शंख

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः।। 1/15
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ।। 1/16

देवता		**शंख**
श्रीकृष्ण	-	पाञ्चजन्य
अर्जुन	-	देवदत्त
भीम	-	पौण्ड्र
युधिष्ठिर	-	अनन्तविजय
नकुल	-	सुघोष
सहदेव	-	मणिपुष्पक

गीता के श्लोक संख्या

अध्याय नाम	-	**श्लोकसंख्या**
1. अर्जुनविषादयोग	-	47
2. सांख्ययोग	-	72
3. कर्मयोग	-	43
4. ज्ञानकर्मसंन्यासयोग	-	42
5. कर्मसंन्यासयोग	-	29
6. आत्मसंयमयोग	-	47
7. ज्ञानविज्ञानयोग	-	30
8. अक्षरब्रह्मयोग	-	28
9. राजविद्याराजगुह्ययोग	-	34

10. विभूतियोग	-	42
11. विश्वरूपदर्शनयोग	-	55
12. भक्तियोग	-	20
13. क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग	-	34
14. गुणत्रय विभागयोग	-	27
15. पुरुषोत्तमयोग	-	20
16. देवासुरसम्पत्विभागयोग	-	24
17. श्रद्धात्रयविभागयोग	-	28
18. मोक्षसंन्यासयोग	-	78
कुल श्लोक	**-**	**700**

- सबसे बड़ा अध्याय - 18, मोक्षसंन्यासयोग (78 श्लोक)
- सबसे छोटा अध्याय - 12वाँ और 15 वाँ (20-20 श्लोक)

श्रीमद्भगवद्गीता के कुछ प्रमुख पात्रों का परिचय -

धृतराष्ट्र	-	दुर्योधन आदि कौरवों के पिता
संजय-	दिव्यदृष्टि प्राप्त धृतराष्ट्र के मन्त्री	
धृष्टद्युम्न	-	पाण्डवों के सेनापति, द्रौपदी के भाई, द्रुपद के पुत्र
भीम	-	पाण्डवों में द्वितीय पाण्डव, कुन्तीपुत्र
अर्जुन	-	श्रीकृष्ण के सखा, पाण्डवों में तृतीय पाण्डव, कुन्तीपुत्र
युधिष्ठिर	-	पाण्डवों में प्रथम पाण्डव, कुन्तीपुत्र, धर्मराज के अवतार
नकुल	-	पाण्डवों में चतुर्थ पाण्डव,माद्री के पुत्र
सहदेव	-	पाण्डवों में अन्तिम पाण्डव, माद्री के पुत्र
द्रुपद	-	द्रौपदी के पिता,
धृष्टकेतु	-	पाण्डव पक्ष के वीर योद्धा
चेकितान	-	पाण्डव पक्ष के वीर योद्धा
काशिराज	-	पाण्डव पक्ष के वीर योद्धा
पुरुजित्	-	पाण्डव पक्ष के वीर योद्धा
कुन्तिभोज	-	पाण्डव पक्ष के प्रमुख योद्धा
अभिमन्यु	-	अर्जुन और सुभद्रा के पुत्र
पितामह भीष्म	-	कौरव पक्ष के प्रथम सेनापति, 10 दिन तक सेनापति रहे।
द्रोणाचार्य	-	कौरवों और पाण्डवों के गुरु, कौरवों के द्वितीय सेनापति,05 दिन तक सेनापति।
कर्ण	-	कौरवों के तीसरे सेनापति, 2 दिन तक सेनापति रहे।
कृपाचार्य	-	कौरवों के प्रमुख योद्धा, सप्त चिरजीवियों में एक
अश्वत्थामा	-	द्रोणाचार्य के पुत्र, कौरव पक्ष के प्रमुख योद्धा
विकर्ण	-	कौरवों पक्ष का प्रमुख योद्धा (दुर्योधन का भाई)

भूरिश्रवा	-	कौरव पक्ष का प्रमुख योद्धा
श्रीकृष्ण	-	भगवान् विष्णु के अवतार, अर्जुन को गीता का उपदेश देने वाले
राजा विराट	-	पाण्डव पक्ष के प्रमुख योद्धा, अज्ञातवाश में पाण्डव यहीं रहे थे।
दुर्योधन	-	धृतराष्ट्र के पुत्र, 100 पुत्रों में सबसे बड़ा

गीता में वर्णित चतुर्विध भक्त

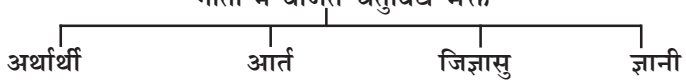

➢ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। 7-16
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। 7-17
हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करने वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु, और ज्ञानी - ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझको भजते हैं।
उनमें नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित अनन्य प्रेमभक्ति ज्ञानी भक्त अति उत्तम हैं, क्योंकि मुझको तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है

➢ गीता में श्रीकृष्ण अपने अवतार का कारण बताते हैं-
* यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। 4-7
* परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। 4-8
हे भारत! जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।
साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए पापकर्म करने वाले का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह स्थापना करने के लिए मैं युग युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

भगवान् के अवतार के हेतु

- धर्म की स्थापना के लिए
- साधुपुरुषों की रक्षा के लिए
- पापकर्म करने वालों को मारने के लिए
- धर्म की वृद्धि के लिए
- अधर्म की हानि के लिए

गीता में अर्जुन के लिए सम्बोधन

अर्जुन, गुडाकेश, पार्थ, परन्तप, भारत, कुन्तीपुत्र, पृथापुत्र, धनञ्जय, महाबाहो निष्पाप, कुरुश्रेष्ठ, सव्यसाचिन्, किरीटी, पाण्डव, कुरुनन्दन आदि।

गीता में श्रीकृष्ण के लिए सम्बोधन

हृषीकेश, कृष्ण, मधुसूदन, जनार्दन, माधव, श्रीभगवान्, अरिसूदन, गोविन्द, केशव, जगत्स्वामी, पुरुषोत्तम, अनन्त, देवेश, जगन्निवास, सच्चिदानन्दघन, आदिदेव, सनातनपुरुष, विश्वरूप, सहस्त्रबाहो, कमलनेत्र, परमेश्वर, महायोगेश्वर, देवदेव, अच्युत, केशिनिषूदन, योगेश्वर।

गीता में वर्णित आत्मा की विषेशतायें

- गीता के अनुसार आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य अक्लेद्य, अशोष्य, नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य, विकाररहित, अबध्य है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि। 2/25
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ 2/24
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।
देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत॥ 2/30

गीता में वर्णित प्रमुख योग-कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग

कर्मयोग- हे अर्जुन ! तेरा कर्म करने का अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा तेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (2/47)

- योग मार्ग में स्थित होकर कर्मों को करना चाहिए। **योगस्थः कुरु कर्माणि....।**
- गीता में समत्व को योग कहा गया है। **'समत्वं योग उच्यते'** (2/48)
- समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है।

योगः कर्मसु कौशलम् (2/50)

- गीता के अनुसार योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है। **कर्मयोगेन योगिनाम्** (3/3)
- 'जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।' **कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते** (3/7)
- गीता में श्रीकृष्ण यह बताते हैं कि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना अत्यन्त श्रेष्ठ है। **नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः** (3/8)

भक्तियोग-

- ईश्वर के प्रति अनन्यभाव से समर्पित होना ही भक्तियोग है।
- जो भक्तजन परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करते हैं उनका योगक्षेम स्वयं भगवान् अपने

ऊपर ले लेते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (9/22)

- भक्तिपूर्वक जो कुछ भी सामग्री भगवान् को अर्पण की जाती है वह भगवान् उसी रूप में स्वीकार करते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति (9/26)

- गीता में श्रीकृष्ण यह कहते हैं कि जो मनुष्य मेरे लिए कर्म करता है, मेरा परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित वह अनन्यभक्ति से युक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।। (11/55)

- गीता में श्रीकृष्ण यह बताते हैं कि जो सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर एक मुझ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की शरण में आ जाता है उसे मैं सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देता हूँ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (18/66)

स्थिरबुद्धि पुरुष के लक्षण

- दुःख में उद्विग्न न होना।
- सुख में अत्यधिक हर्षित न होना।
- राग, भय, क्रोध से मुक्त।

गीता के अनुसार अष्ट प्रकृति

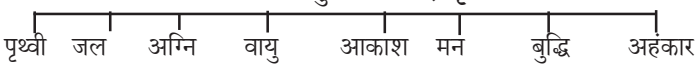

स्थिरप्रज्ञ का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में -

गीता में श्रीकृष्ण यह बताते हैं कि जिस समय मनुष्य अपने मन में सभी कामनाओं को मिटाकर आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। (2/55)

- दुःख होने पर जो उद्वेग नहीं करता और अत्यधिक सुख में सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके मन से राग, भय, और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है। **वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते (2/56)**
- गीता में अष्ट प्रकृति का वर्णन - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये अष्ट प्रकार से विभाजित प्रकृति है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। (7/4)

➢ श्रीमद्भगवद्गीता को **गीतोपनिषद्** भी कहा जाता है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण की विभूतियाँ -

जल में	-	रस ''रसोऽहमप्सु कौन्तेय'' (7.8)
चन्द्र सूर्य में	-	प्रकाश ''प्रभास्मि शशिसूर्ययोः'' (7.8)
वेदों मे	-	ओंकार ''प्रणवः सर्ववेदेषु'' (7.8)
आकाश में	-	शब्द ''शब्दः खे'' (7.8)
पुरुषों में	-	पुरुषत्व '' पौरुषं नृषु'' (7.8)
पृथ्वी में	-	गन्ध ''पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च'' (7.8)
अग्नि में	-	तेज ''तेजश्चास्मि विभावसौ'' (7.8)
तपस्वियों में	-	तप ''तपश्चास्मि तपस्विषु'' (7.9)
सम्पूर्णभूतों में	-	जीवन ''जीवनं सर्वभूतेषु'' (7.9)
बुद्धिमानों में	-	बुद्धि ''बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि'' (7.10)
तेजस्वियों में	-	तेज ''तेजस्तेजस्विनामहम् '' (7.10)
अदितिपुत्रों में	-	विष्णु ''आदित्यानामहं विष्णुः '' (10.21)
ज्योतियों में	-	किरणों वाला सूर्य ''ज्योतिषां रविरंशुमान् '' (10.21)
नक्षत्रों में अधिपति	-	चन्द्रमा ''नक्षत्राणामहं शशी'' (10.21)
वेदों में	-	सामवेद ''वेदानां सामवेदोऽस्मि'' (10.22)
देवों में	-	इन्द्र ''देवानामस्मि वासवः '' (10.22)
इन्द्रियों में	-	मन '' इन्द्रियाणां मनश्चास्मि'' (10.22)
एकादश रुद्रों में	-	शंकर '' रुद्राणां शङ्करश्चास्मि'' (10.23)
यक्ष तथा राक्षसों में	-	कुबेर ''वित्तेशो यक्षरक्षसाम् '' (10.23)
आठ वस्तुओं में	-	अग्नि ''वसूनां पावकश्चास्मि '' (10.23)
पर्वतों में	-	सुमेरु ''मेरुः शिखरिणामहम् '' (10.23)
पुरोहितों में	-	बृहस्पति ''पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् '' (10.24)
सेनापतियों में	-	स्कन्द ''सेनानीनामहं स्कन्दः'' (10.24)
जलाशय में	-	समुद्र '' सरसामस्मि सागरः'' (10.24)
महर्षियों में	-	भृगु '' महर्षीणां भृगुरहम्'' (10.25)
शब्दों में	-	(अक्षर) ओंकार ''गिरामस्म्येकमक्षरम्'' (10.25)
यज्ञों में	-	जपयज्ञ ''यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'' (10.25)
स्थिर रहने वालों में	-	पहाड़ ''स्थावराणां हिमालयः '' (10.25)
वृक्षों में	-	पीपल ''अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम् '' (10.26)
देवर्षियों में	-	नारद '' देवर्षीणां च नारदः '' (10.26)
सिद्धों में	-	कपिल '' सिद्धानां कपिलो मुनिः '' (10.26)

गन्धर्वों में	-	चित्ररथ " गन्धर्वाणां चित्ररथः " (10.26)
अश्वों में	-	उच्चैःश्रवा "उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्" (10.27)
हाथियों में	-	ऐरावत " ऐरावतं गजेन्द्राणाम्"
मनुष्यों में	-	राजा " नराणां च नराधिपम् " (10.27)
शस्त्रों में	-	वज्र " आयुधानामहं वज्रम्" (10.28)
गौओं में	-	कामधेनु " धेनुनामस्मि कामधुक् " (10.28)
सर्पों में	-	वासुकि " सर्पाणामस्मि वासुकिः " (10.28)
सन्तानोत्पत्ति में	-	कामदेव " प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः " (10.28)
नागों में	-	शेषनाग "अनन्तश्चास्मि नागानाम् " (10.29)
जलचरों में	-	वरुण " वरुणो यादसामहम् " (10.29)
पितरों में	-	अर्यमा " पितृणामर्यमा चास्मि " (10.29)
शासन करने वालों में	-	यमराज " यमः संयमतामहम् " (10.29)
दैत्यों में	-	प्रह्लाद " प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम् (10.30)
पशुओं में	-	सिंह "मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहम् " (10.30)
पक्षियों में	-	गरुड़ " वैनतेयश्च पक्षिणाम् " (10.30)
गणना करने वालों में	-	समय " कालः कलयतामहम् " (10.30)
पवित्र करने वालों में	-	वायु " पवनः पवतामस्मि " (10.31)
शस्त्रधारियों में	-	श्रीराम " रामः शस्त्रभृतामहम् " (10.31)
मछलियों में	-	मगर " झषाणां मकरश्चास्मि " (10.31)
नदियों में	-	भागीरथी गंगा " स्रोतसामस्मि जाह्नवी " (10.31)
विद्याओं में	-	अध्यात्मविद्या " अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" (10.32)
तर्क में	-	वाद " वादः प्रवदतामहम् " (10.32)
अक्षरों में	-	अकार " अक्षराणामकारोऽस्मि " (10.33)
समासों में	-	द्वन्द्व " द्वन्द्वः सामासिकस्य च " (10.33)
नाश करने वालों में	-	मृत्यु " मृत्युः सर्वहरश्चाहम् " (10.34)
स्त्रियों में	-	"कीर्ति, श्री, वाक्,स्मृति, धृति, क्षमा, कीर्तिः श्रीर्वाक्चनारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा " (10.34)
श्रुतियों में	-	बृहत्साम " बृहत्साम तथा साम्नां " (10.35)
छन्दों में	-	गायत्री " गायत्री छन्दसामहम् " (10.35)
महीनों में	-	मार्गशीर्ष " मासानां मार्गशीर्षोऽहम् (10.35)
ऋतुओं में	-	वसन्त " ऋतूनां कुसुमाकरः " (10.35)
छल करने वालों में	-	जूआ " द्यूतं छलयतामस्मि" (10.36)
प्रभावशाली पुरुषों का	-	प्रभाव " तेजस्तेजस्विनामहम् " (10.36)
जीतने वालों का	-	विजय " जयोऽस्मि " (10.36)

निश्चय करने वालों का	-	निश्चय ''व्यवसायोऽस्मि'' (10.36)
सात्त्विक पुरुषों का	-	सात्त्विक भाव ''सत्त्वं सत्त्ववतामहम्'' (10.36)
वृष्णिवंशियों में	-	वासुदेव ''वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि'' (10.37)
पाण्डवों में	-	धनञ्जय ''पाण्डवानां धनञ्जयः'' (10.37)
मुनियों में	-	वेदव्यास ''मुनीनामप्यहं व्यासः'' (10.37)
कवियों में	-	शुक्राचार्य ''कवीनामुशना कविः'' (10.37)
दमन करने वालों का जीतने की इच्छा	-	दण्ड ''दण्डो दमयतामस्मि'' (10.38)
वालों की गुप्त रखने योग्य	-	नीति ''नीतिरस्मि जिगीषताम्'' (10.38)
भावों का (रक्षक)	-	मौन ''मौनं चैवास्मि गुह्यानां'' (10.38)
ज्ञानवानों का	-	तत्त्वज्ञान ''ज्ञानं ज्ञानवतामहम्'' (10.38)

गीता में वर्णित दैवीय गुण -

➢ गीता में श्रीकृष्ण यह बताते हैं कि दैवीय प्रकृति के आश्रित महात्मा मुझको सब भूतों का कारण जानकर अनन्य मन से निरन्तर भजते हैं।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥ (9/13)

➢ गीता में श्रीकृष्ण दैवी सम्पत्तियों का स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं कि भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की शुद्धता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यान में स्थिति सर्वस्व समर्पण, इन्द्रियों का भली प्रकार दमन ये सब दैवी गुण हैं

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ (16/1)

➢ मन, वाणी, शरीर से किसी को कष्ट न देना यथार्थ और प्रियभाषण, अहंकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, किसी की भी निन्दा न करना, सभी प्राणियों में दया- ये सब दैवी सम्पत्तियाँ हैं।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥ (16/2)

गीता में वर्णित दैवी गुण

● अभय ● सत्त्वसंशुद्धि ● ज्ञानयोगव्यवस्थिति ● दान ● इन्द्रियों का दमन ● गुरुजनों की पूजा ● अग्निहोत्र करना ● स्वाध्याय करना ● अहिंसा ● सत्यभाषण ● क्रोध न करना ● अन्तः करण की शुद्धि ● निन्दा से दूर रहना ● बिना कारण दया करना ● तेज ● क्षमा ● धैर्य ● बाहर की शुद्धि

(गीता - 16/1-3)

गीता में वर्णित आसुरी सम्पदा

● दम्भ ● दर्प ● अभिमान ● क्रोध ● कठोरता ● अज्ञान
● असत्यभाषण ● अपवित्रता ● भ्रमित चित्त वाला ● विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त
(गीता - 16 - 4,7,10,15,16)

➢ श्रीकृष्ण बताते है कि दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान ये आसुरी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।। (16/4)

➢ आसुर स्वभाव वाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों को नहीं जानते। इसलिए उनमें न तो बाहर भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।। (16/7)

गीता में अर्जुन द्वारा पूछे गये कुछ प्रमुख प्रश्न -

➢ गीता के प्रारम्भ मे अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि हे मधुसूदन! मैं किस प्रकार भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूँगा? क्योंकि वे दोनों पूजनीय हैं?

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।। (2/4)

➢ अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं जिस प्रकार एक गुरु अपने शिष्य का सभी प्रकार से कल्याण करता है उसी प्रकार मैं आपका शिष्य हूँ अतः मेरे लिए जो कल्याण का साधन हो वह कहिये।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (2/7)

➢ श्रीकृष्ण से पूछते हुए अर्जुन कहते हैं कि यदि कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है तो आप मुझे कर्म में क्यों लगाते हो?

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।। (5/1)

➢ अर्जुन श्रीकृष्ण से ब्रह्म, अध्यात्म, क्रम के विषय में प्रश्न पूछते हुये कहते हैं कि ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है?

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते (8/1)

➢ अर्जुन अगुण परमेश्वर और निराकार ब्रह्म दोनों प्रकार के उपासकों के विषय में प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि दोनों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।। (12/1)

- अर्जुन श्रीकृष्ण से प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि जो मनुष्य शास्त्रविधि को त्यागकर देवताओं का पूजन करते हैं, उनकी कौन सी गति होती है? सात्विकी अथवा राजसी अथवा तामसी?

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥ (17/1)

गीता के अनुसार ईश्वर का निवास -

- श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सभी प्राणियों के हृदय में जो रहता है वही ईश्वर है-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति (18/61)

गीता के अनुसार ज्ञान और अज्ञान का स्वरूप-

- अध्यात्म ज्ञान में नित्यस्थिति और तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखता यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है वह अज्ञान है।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥ (13/11)

श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य

- **गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान्।**
  विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः॥
- **गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।**
  नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च॥
- **मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने।**
  सकृद् गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम्॥
- **भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम्।**
  गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥
- **एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव।**
  एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माण्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

गीता में चार वर्णों का वर्णन

- गीता में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का वर्णन स्पष्ट रूप से मिलता है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ (4/13)

1.ब्राह्मण 2.क्षत्रिय 3.वैश्य 4.शूद्र

ब्राह्मणक्षत्रियविंशा शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ (18/41)

गीता में वर्णित भगवान् श्रीकृष्ण की शक्तियाँ

- गीता में भगवान् की पाँच शक्तियों का वर्णन हुआ है-

आद्या गुणमयी दैवी तथान्या दिव्यचिन्मयी।
योगमायेति च प्रोक्ता गीतायां पञ्च शक्तयः॥

➢ **पञ्च शक्तियाँ**

मूल प्रकृति - (9/7)
दिव्य चिन्मयशक्ति - (4/6)
योगमाया शक्ति - (7/25)
दैवी शक्ति - (9/13)
गुणमयी माया - (3/27,29)

गीता में विश्वरूप-दर्शन-

➢ गीता के एकादश अध्याय में अर्जुन के प्रार्थना पर भगवान् श्रीकृष्ण अपना विराट् स्वरूप अर्जुन को दिखलाते हैं।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्। (11/47)

गीता में कहे गये श्लोकों की संख्या-

श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा कहे गये श्लोक	-	574
अर्जुन के द्वारा कहे गये श्लोक	-	84
संजय के द्वारा कहे गये श्लोक	-	41
धृतराष्ट्र के द्वारा कहे गये श्लोक	-	1
योग	**-**	**700**

➢ **गीता में प्रयुक्त मुख्य छन्द-** गीता में चार छन्दों का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है।

1. अनुष्टुप् 2. बृहती 3. त्रिष्टुप् 4. जगती

➢ **गीता में अनुबन्ध चतुष्टय-**

1. **विषय-** गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग आदि विषय हैं।
2. **प्रयोजन-** जीव मात्र का कल्याण करना ही इस ग्रन्थ का प्रमुख प्रयोजन है।
3. **अधिकारी-** अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य गीता को पढ़ने के अधिकारी हैं। किसी भी देश में रहने वाला, किसी वेश को धारण करने वाला, किसी सम्प्रदाय को मानने वाला, किसी वर्ण आश्रम में रहने वाला, किसी भी अवस्था वाला इस दिव्य वेद सार स्वरूप गीता को पढ़ने का और मुक्ति पाने का अधिकारी है।
4. **सम्बन्ध-** गीता के विषय और गीता में परस्पर प्रतिपाद्य-प्रतिपादक का सम्बन्ध है। जीव का कल्याण किस प्रकार हो - यह प्रतिपाद्य विषय है और कल्याण की युक्तियाँ बताने वाली होने से गीता स्वयं प्रतिपादक है।

श्रीमद्भगवद्गीता की प्रमुख सूक्तियाँ

1. **क्लैब्यं मा स्म गमः (2/3)**
   भावार्थ- नपुंसकता को मत प्राप्त हो।
2. **शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। (2/7)**
   मैं आपका शिष्य हूँ इसलिए आपके शरण आये हुए मुझको शिक्षा दीजिए।
3. **गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। (2/11)**
   भावार्थ- जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिए पण्डित जन शोक नहीं करते।
4. **आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत। (2/14)**
   भावार्थ- उत्पत्ति और विनाश दोनों अनित्य हैं इसलिए हे भारत! उनको सहन कर।
5. **समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते (2/15)**
   भावार्थ- सुख दुःख को समान समझने वाला धीर मोक्ष के योग्य होता है।
6. **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। (2/16)**
   भावार्थ- असत् वस्तु की सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है।
7. **अन्तवन्त इमे देहा। (2/18)**
   भावार्थ- ये सब शरीर नाशवान् है।
8. **नायं हन्ति न हन्यते। (2/19)**
   भावार्थ- यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।
9. **न हन्यते हन्यमाने शरीरे (2/20)**
   भावार्थ-शरीर के माने जाने पर भी (यह आत्मा) नहीं मारा जाता।
10. **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।**
    तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही। (2/22)
    भावार्थ- जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसने नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।
11. **नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
    न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ (2/23)
    भावार्थ- इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता।
12. **नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।(2/24)**
    भावार्थ- यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी, अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है।

13. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः। (2/27)

(क्योंकि) जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है।

14. सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ (2/38)

जय-पराजय, लाभ हानि और सुख-दुःख को समान समझकर उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

15. स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (2/40)

भावार्थ- इस कर्मयोग रूप धर्म का थोड़ा-सा भी साधन जन्म मृत्यु रूप महान् भय से रक्षा कर लेता है।

16. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (2/47)

भावार्थ- तेरा कर्म करने में ही अधिकार है (उसके) फलों में कभी नहीं।

17. समत्त्वं योग उच्यते। (2/48)

भावार्थ- समत्व ही योग कहलाता है।

18. बुद्धिनाशात् प्रणश्यति। (2/63)

भावार्थ- बुद्धि का नाश हो जाने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

19. प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। (2/65)

भावार्थ- अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है।

20. अशान्तस्य कुतः सुखम् (2/66)

भावार्थ- शान्तिरहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है?

21. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। (2/69)

भावार्थ- सम्पूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ योगी जागता है।

22. स शान्तिमाप्नोति न कामकामी। (2/70)

भावार्थ- वही पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

23. निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति। (2/71)

भावार्थ- ममतारहित, अहंकाररहित जो है वही शान्ति को प्राप्त होता है।

24. तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्। (3/2)

भावार्थ- उस एक बात को निश्चित करके कहिये, जिससे मैं कल्याण को प्राप्त हो जाऊँ।

25. न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। (3/5)

भावार्थ- निःसन्देह कोई भी (मनुष्य) किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता।

26. यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। (3/9)

भावार्थ- यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों से अतिरिक्त दूसरे कर्मों में (लगा हुआ ही) यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है।

27. परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ। (3/11)

भावार्थ- एक दूसरे को उन्नत करते हुए (तुम लोग) परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

28. भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। (3/13)

भावार्थ- जो पापी लोग अपना शरीर पोषण करने के लिए ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

29. अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ (3/14)

भावार्थ- सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ, विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है।

30. एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति। (3/16)

भावार्थ- हे पार्थ! जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार परम्परा से प्रचलित सृष्टि चक्र के अनुकूल नहीं बरतता अर्थात् अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, वह इन्द्रियों के द्वारा भोगों में रमण करने वाला पापायु व्यर्थ ही जीता है।

31. नैव तस्य कृतेनार्थे नाकृतेनेह कश्चन। (3/18)

भावार्थ- उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से।

32. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। (3/19)

भावार्थ- इसलिए तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भलीभाँति करता रह।

33. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (3/21)

भावार्थ- श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं, वह जो कुछ प्रमाणित कर देता है समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार बरतने लग जाता है।

34. अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। (3/27)

भावार्थ- जिसका अन्तः करण अहंकार से मोहित हो रहा है ऐसा अज्ञानी मैं कर्ता हूँ ऐसा मानता है।

35. तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥ (3/28)
भावार्थ- परन्तु हे महाबाहो! गुणविभाग और कर्मविभाग के तत्त्व को जानने वाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे है। ऐसा समझकर (उनमें) आसक्त नहीं होता।

36. स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ (3/35)
भावार्थ- अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

37. जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्। (3/43)
भावार्थ- हे महाबाहो! (अर्जुन) तू इस कामरूप दुर्जय शत्रु को मार डाल।

38. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (4/7)
भावार्थ- हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकाररूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।

39. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (4/8)
भावार्थ- साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

40. जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं (4/9)
भावार्थ- (हे अर्जुन) मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं।

41. ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (4/11)
भावार्थ- जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।

42. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (4/13)
भावार्थ- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है।

43. गहना कर्मणो गतिः (4/17)
भावार्थ- क्योंकि कर्म की गति गहन है।

44. यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते। (4/23)
भावार्थ- यज्ञ सम्पादन के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म भलीभाँति विलीन हो जाते हैं।

45. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ (4/24)

भावार्थ- जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्त्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है - उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

46. यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्॥ (4/31)

भावार्थ- यज्ञ से बचे हुए अमृत का अनुभव करने वाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

47. सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥ (4/33)

भावार्थ- हे अर्जुन! यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।

48. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (4/34)

भावार्थ- उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भली-भाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मतत्त्व को भली-भाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

49. यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहम्। (4/35)

भावार्थ- जिसको जानकर फिर मोह नहीं होगा।

50. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं। (4/39)

भावार्थ- श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है।

51. संशयात्मा विनश्यति। (4/40)

भावार्थ- संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है।

52. कर्मयोगो विशिष्यते। (5/2)

भावार्थ- कर्मयोग (साधन में सुगम होने से) श्रेष्ठ है।

53. निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते। (5/3)

भावार्थ- क्योंकि राग द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित (पुरुष) सुखपूर्वक संसारबन्धन से मुक्त हो जाता है।

54. फले सक्तो निबध्यते। (5/12)

भावार्थ- फल में आसक्त होकर बँधता है।

55. इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। (5/19)

भावार्थ- जिनका मन समभाव में स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है।

56. ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः। (5/20)

भावार्थ- ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा में स्थित है।

59. ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः। (5/22)

भावार्थ- जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी निःसन्देह दुःख के ही हेतु हैं और आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

58. भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ (5/29)

भावार्थ- मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

59. न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन (6/2)

भावार्थ- क्योंकि संकल्पों का त्याग न करने वाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता।

60. आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते। (6/3)

भावार्थ- योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है।

61. आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः। (6/5)

आप ही तो अपने मित्र हैं और आप ही अपने शत्रु हैं।

62. समबुद्धिर्विशिष्यते। (6/9)

भावार्थ- समान भाव रखने वाला अत्यन्त श्रेष्ठ है।

63. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ (6/17)

भावार्थ- दुःखों का नाश करने वाला योग यथा योग्य आहार विहार करने वाले का, कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य तथा सोने जगने वाले का ही सिद्ध होता है।

64. तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्। (6/23)

भावार्थ- दुःखरूप संसार के संयोग से रहित है (तथा) जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिए।

65. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (6/30)

भावार्थ- जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सब के आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता।

66. अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। (6/35)

भावार्थ- परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! (यह मन) अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।

67. न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। (6/40)

भावार्थ- हे प्यारे! आत्मोद्धार के लिए अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिए कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

68. मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति। (7/7)

भावार्थ- मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम (कारण) नहीं है।

69. मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। (7/14)

भावार्थ- जो पुरुष मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस माया का उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं।

70. वासुदेवः सर्वम्। (7/19)

भावार्थ- सब कुछ वासुदेव ही है।

71. मद्भक्ता यान्ति मामपि। (7/23)

भावार्थ- मेरे भक्त (चाहे जैसे ही भजें, अन्त मे वे) मुझको ही प्राप्त होते हैं।

72. मामनुस्मर युध्य च। (8/7)

भावार्थ- मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।

73. दुःखालयमशाश्वतम्। (8/15)

भावार्थ- दुःखों के घर (एवं) क्षणभंगुर

74. मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। (8/16)

भावार्थ- हे कुन्ती पुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता।

75. भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रालीयते। (8/19)

भावार्थ- वही यह भूत समुदाय उत्पन्न हो होकर लीन होता है।

76. यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। (8/21)

भावार्थ- जिस सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते, वह मेरा परम धाम है।

77. क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। (9/21)

भावार्थ- पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं।

78. गतागतं कामकामा लभन्ते। (9/21)

भावार्थ- भोगों की कामना वाले पुरुष बार-बार आवागमन को प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं।

79. योगक्षेमं वहाम्यहम्। (9/22)

भावार्थ- योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

80. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (9/26)

भावार्थ- जो मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह (पत्र-पुष्पादि) मैं खाता हूँ।

81. यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (9/27)

भावार्थ- हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान दान देता है, जो तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर।

82. कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।(9/31)

भावार्थ- हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

83. अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। (9/33)

भावार्थ- क्षणभंगुर और सुखरहित इस मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।

84. मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। (9/34)

भावार्थ- मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझको प्रणाम कर।

85. यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि। (10/25)

भावार्थ- सब प्रकार के यज्ञों में (मैं) जप यज्ञ हूँ।

86. अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। (10/32)

भावार्थ- विद्याओं में अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या हूँ।

87. निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्। (11/33)

भावार्थ- हे सव्यसाचिन! तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा।

88. न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो। (11/43)

भावार्थ- आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है?

89. ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः। (12/4)

भावार्थ- वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सबमें समान भाव वाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

90. त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्। (12/12)

भावार्थ- त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है।

91. जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्। (13/8)

भावार्थ- जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना।

92. ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः। (13/17)

भावार्थ- वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति है।

93. पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्। (13/21)

भावार्थ- प्रकृति में स्थित ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है।

94. देहेऽस्मिन्पुरुषः परः। (13/22)

भावार्थ- इस देह में स्थित यह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है।

95. न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्। (13/28)

भावार्थ- क्योंकि जो अपने द्वारा अपने को नष्ट नहीं करता इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

96. शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते। (13/31)

भावार्थ- हे अर्जुन! शरीर में स्थित होने पर भी न कुछ करता है और न लिप्त ही होता है।

97. ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ (14/18)

भावार्थ- सत्त्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं, राजस पुरुष मध्य में अर्थात् मनुष्यलोक में रहते हैं और तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्य में स्थित तामस पुरुष अधोगति को अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को तथा नरकों को प्राप्त होते हैं।

98. उर्ध्वमूलमधः शाखामश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। (15/1)

भावार्थ- आदिपुरुष परमेश्वर रूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखा वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं।

99. न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ (15/6)

भावार्थ- जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस (स्वयं प्रकाश परमपद को) न सूर्य प्रकाशित कर सकता है न चन्द्रमा और न अग्नि, वही मेरा परम धाम है।

100. ममैवांशो जीवलोके। (15/7)

भावार्थ- इस देह में (जीवात्मा) मेरा ही अंश है।

101. विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। (15/10)

भावार्थ- अज्ञानी जन नहीं जानते, (केवल) ज्ञानरूप नेत्रों वाले तत्त्व से जानते हैं।

102. सर्वस्य चाहं ह्यदि सन्निविष्टः। (15/15)

भावार्थ- मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ।

103. दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। (16/5)

भावार्थ- दैवी सम्पदा मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा बाँधने के लिए मानी गयी है।

104. कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः। (16/11)

भावार्थ- विषय भोगों के भोगने में तत्पर रहने वाले 'इतना ही सुख' है इस प्रकार मानने वाले होते हैं।

105. तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। (16/24)

भावार्थ- इससे तेरे लिए कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है।

106. श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः। (17/3)

भावार्थ-यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।

107. यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते। (18/11)

भावार्थ- जो कर्मफल का त्यागी है वही त्यागी है, यह कहा जाता है।

108. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। (18/37)

भावार्थ- जो आरम्भ काल में विष के तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है।

109. स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। (18/45)

भावार्थ- अपने-अपने स्वभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्ति रूप परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

110. स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः। (18/46)

भावार्थ- अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा उस परमेश्वर की पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

111. सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः। (18/48)

भावार्थ- सभी कर्म धूएँ से अग्नि की भाँति दोष से युक्त हैं।

112. मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। (18/58)

भावार्थ- मुझमें चित्त वाला होकर तू मेरी कृपा से समस्त संकटों को पार कर जायेगा।

113. प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति। (18/59)

भावार्थ- स्वभाव तुझे जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा।

114. ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशोऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (15/61)

भावार्थ- हे अर्जुन! शरीररूप यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।

115. तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।(18/62)

भावार्थ- हे भारत! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा।

116. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (18/66)

भावार्थ- सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पर्ण कर्तव्य कर्मों को त्यागकर एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, शोक मत कर।

117. नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा। (18/73)

भावार्थ- (मेरा) मोह नष्ट हो गया (और) मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।

118. करिष्ये वचनं तव। (18/73)

भावार्थ- आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

119. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (18/78)

भावार्थ- जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।

❑❑